(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

ार्षिक मू० २) | सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥ | एक अंक ≡)

ंपादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, स० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७ | मथुरा, १ मई सन् १९४६ ई० | अंक ५

पहले अपनी सेवा और सहायता करो

इस संसार में अनेक प्रकार के पुण्य और परमार्थ हैं। शास्त्रों में नाना प्रकार के धर्म अनुष्ठानों का सविस्तार विधि विधान है और उनके सुविस्तृत महात्म्यों का वर्णन है। दूसरों की सेवा सहायता करना पुण्य कार्य है, इससे कीर्ति आत्म संतोष तथा सद्गति की प्राप्ति होती है।

पर इन सबसे बढ़ कर भी एक पुण्य परमार्थ है और वह है—आत्म निर्माण। अपने दुर्गुणों को, कुविचारों को, कुसंस्कारों को, ईर्षा, तृष्णा, क्रोध, डाह, क्षोभ, चिन्ता, भय एवं वासनाओं को विवेक की सहायता से आत्मज्ञान की अग्नि में जला देना इतना बड़ा यज्ञ है जिसकी तुलना सहस्र अश्वमेघों से नहीं हो सकती। अपने अज्ञान को दूर करके मन मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलाना भगवान् की सच्ची पूजा है। अपनी मानसिक तुच्छता, दीनता, हीनता, दासता, को हटाकर निर्भयता, सत्यता पवित्रता एवं प्रसन्नता की आत्मिक प्रवृत्तियाँ बढ़ाना करोड़ मन सोना दान करने की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

हर मनुष्य अपना अपना आत्म निर्माण करे तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। फिर मनुष्यों को स्वर्ग जाने की इच्छा करने की नहीं, वरन् देवताओं को पृथ्वी पर आने की आवश्यकता अनुभव होगी। दूसरों की सेवा सहायता करना पुण्य है, पर अपनी सेवा सहायता करना इससे भी बड़ा पुण्य है। अपनी शारीरिक मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति को ऊँचा उठाना, अपने को एक आदर्श नागरिक बनना इतना बड़ा धर्म कार्य है जिसकी तुलना अन्य किसी भी पुण्य परमार्थ से नहीं हो सकती।

"अखण्ड-ज्योति" द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति के पीछे लेखक का गहरा अनुभव एवं अनुसंधान है। इतने गहन विषयों पर इतना सुलभ साहित्य अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है। यह पुस्तकें पाठक की जीवन दिशा में उथल पुथल उत्पन्न कर देने की दैवी शक्ति से पूर्ण तया सम्पन्न हैं। इनमें से जो पुस्तकें आपने अभी तक नहीं पढीं, उन्हें आज ही मँगा लीजिए।

१—मैं क्या हूँ ? ।=)
२—सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
३—प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
४—परकाया प्रवेश ।=)
५—स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
६—मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
७—स्वरयोग से दिव्य ज्ञान ।=)
८—भोग में योग ।=)
९—बुद्धि बढाने के उपाय ।=)
१०—धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
११—पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
१२—वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
१३—मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
१४—जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
१५—ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
१६—क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
१७—गहना कर्मणोगति ।=)
१८—जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विकप्रकाश ।=)
१९—पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
२०—शक्ति संचय के पथ पर ।=)
२१—आत्म गौरव की साधना ।=)
२२—प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
२३—मित्र भाव बढाने की कला ।=)
२४—आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
२५—आगे बढने की तैयारी ।=)
२६—आध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
२७—ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
२८—ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ।=)
२९—यम और नियम ।=)
३०—आसन और प्राणायाम ।=)
३१—प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ।=)
३२—तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
३३—आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ।=)
३४—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
३५—ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
३६—हस्तरेखा विज्ञान ।=)
३७—विवेक सतसई ।=)
३८—संजीवनी विद्या ।=)
३९—गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
४०—महान जागरण ।=)
४१—तुम महान हो ।=)
४२—गृहस्थ योग ।=)
४३—अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति ।=
४४—घरेलू चिकित्सा ।=)
४५—बिना औषधि के कायाकल्प ।=)
४६—पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण ।=)
४७—हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ।=)
४८—विचार करने की कला ।=)
४९—दीर्घ जीवन के रहस्य ।=)
५०—हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ।=

कमीशन देना क़तई बन्द है। हां आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें लेने पर रजिस्ट्री पार्सल का खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा।

पता—मैनेजर 'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा।

मथुरा १ मई सन् १९४६ ई०

उपार्जन की मर्यादा

हम देखते हैं कि आज मनुष्य को धन की अत्याधिक तृष्णा बुरी तरह बैचेन किए हुए है। सदा उसे धन की चिन्ता लगी रहती है और उसी के लिए वह सोचता विचारता, योजनाएं बनाता तथा काम करता है। शरीर की अनिवार्य स्वभाविक क्रियाओं को छोड़ कर शेष समय का समस्त उपयोगी भाग प्राय, धनोपार्जन की प्रवृत्तियों में लगा रहता है। उसी योजना चक्रमें प्राय ! सारा जीवन समाप्त हो जाता है।

यह दूसरी बात है कि इतना प्रयत्न करते हुए भी कितने व्यक्ति धनवान बन पाते हैं और कितने ज्यों के त्यों रह जाते हैं, मुश्किल से निर्वाह हो पाता है और पूंजी के नाम पूरी झाँझ भी जमा नहीं हो पाती, कुछ व्यक्ति थोड़ा पैसा जमा भी कर लेते हैं। और कई व्यक्ति किसी प्रकार कुछ अधिक बड़े धनवान बन जाते हैं। जिन्हे धन प्राप्त हो जाता है उन्हें शान शौकत, ऐश आराम के साधन प्राप्त हो जाते हैं जो धनी नहीं हो पाते वे उनसे भी वंचित ही रह जाते हैं। जो धनी हैं वे दूर से देखने में सुखी और सम्पन्न दिखाई पढ़ते हैं पर निकट से देखने पर उन की भी शारीरिक एवं मानसिक दशा शोचनीय ही दृष्टिगोचर होती है। धन की अधिकता किसी को सुख शान्ति प्रदान नहीं कर सकती। और न उन आनन्द उल्लासों को प्राप्त कर सकती है जिन्हें प्राप्त करने से जीवन सार्थिक समझा जाता है।

यह ठीक है कि जीवन निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता है। निश्चय ही इतना पैसा मनुष्य के पास होना चाहिए जिससे वह अपने अतिथियों का ठीक रीति से सत्कार कर सके, परिवार का भली प्रकार भरण पोषण कर सके, बच्चों की शिक्षा दीक्षा विवाह आदि की व्यवस्था हो सके। बीमारी मुकदमा, अकाल आकस्मिक दुर्घटनाओं से बचाव किया जा सके। तथा मान मर्यादा की रक्षा एवं दान पुण्य की उमंग के समय मन मसोस कर न रहना पडे। यदि मनुष्य अपनी शारीरिक और मानसिक योग्यताओं को शिक्षा काल में समुचित रीति से विकसित कर ले तो इतना द्रव्य उपार्जन करने में साधारणत: कुछ कठिनाई नहीं होती।

साधारणत: जीवन निर्वाह का काम साधारण प्रयत्न और परिश्रम में पूरा हो जाता है जिन लोगों की उपार्जन शक्ति न्यून है वे अपने खर्चों को घटा कर काम चला सकते हैं। जीवन की जिन आवश्यकताओं के लिए पैसे की आवश्यकता है वे आवश्यकतायें एकांगी है। केवल उन्हें ही पूर्ण करने के लिये सारी शक्तियों का खर्च कर डालना जीवन के वास्तविक आनन्द से वंचित होना है। मानव तत्व के अनेक पहलू एसे है जिनमें पैसे का कुछ विशेष महत्व नहीं है। अमीर गरीब बिना भेद भाव के उनका आनन्द उपलब्ध कर सकते हैं।

गरीब लोग भी अच्छा स्वास्थ्य रख सकते हैं। गायन, वाद्य तथा ललित कलाओं का रसास्वादन कर सकते हैं, मनोविनोद के प्राकृतिक साधन सभी को समान रूप से उपलब्ध हैं, परिवार में प्रेम,

एकता, सेवा सहयोग होने पर जो सुख मिलता है। उसमें अमीरी गरीबी का कोई प्रश्न नहीं। स्वाध्याय सत्संग, प्रवचन आदि का आनन्द अपने ढंग का अनूठा है। सच्चे मित्रों की मैत्री, दम्पति का हार्दिक एकीकरण, परजनों की सदभावनाऐं भूतल के स्वर्ग सुख हैं। हृदय की पवित्रता, निष्कपटता, सेवाभाव धर्म, साहस, सद्‌विवेक, प्रसन्नता, सत्‌निष्ठा, त्याग, तप, मधुर भाषण, उदारता, सद्‌भावना आदि दैवी सम्पतियों के कारण जो आत्म शान्ति प्रतिष्ठा, कीर्ति एवं श्रद्धा प्राप्ति होती है उसका सुख अपने ढङ्ग का अनोखा है। समान श्रेणी के मित्रों के सहचार्य में कार्य करते हुये समय बिताते हुए जो आनन्द मिलता है उसकी मिठास भी बड़ी ही स्वादिष्ट होती है। किसी का उपकार करने के पश्चात, प्रलोभन और भयों पर विजय प्राप्त करके अपने कठोर कर्तव्य पालन करने के पश्चात् ,जो आनन्द आता है जो सन्तोष होता है उसका महत्व वे ही लोग समझ सकते हैं जिन्हें उस दिव्य रस का आस्वादन करने का अवसर तथा अनुभव प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार जीवन के अनेक पहलू अनेक प्रकार के आनन्दों से परिपूर्ण हैं। इन सभी दशाओं में हमारी शक्तियां और प्रकृतियां लगनी चाहिये। जैसे शरीर के सभी अंग स्वस्थ एवं पुष्ट रहते हैं तो मनुष्य सुडौल, सुन्दर आकर्षक दीखता है यदि उसका एक अङ्ग काफी पुष्ट हो जरूरत से ज्यादा मोटा हो और अन्य अंग दुर्बल हो रहे हों तो आदमी कुरूप दिखाई देगा। किसी आदमी की नाक तो लोटे की बराबर हो और अन्य सब अंग दुर्बल हो रहे हों तो वह उपहास्पद होगा। इसी प्रकार जिसने धन तो काफी जमा कर लिया है पर जीवन के अनेकानेक आनन्दों से वंचित है वह सुखी नहीं कहा जा सकता। उसकी यह उन्नति उपहासास्पद, जीवन को कुरूप बनाने वाली है।

धन कमाना भी आवश्यक है। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि धन कमाना ही आवश्यक नहीं है। जीवन अनेक मुखी है, उसका सभी दशाओं विकाश होना चाहिये। जो व्यक्ति दिन रा धन उपार्जन के लिए ही सोचते विचारते, का करते एवं मरते जीते हैं वे भारी भूल में हैं। उन पता नहीं कि इस कमाई की धुन में कितनी महत्व पूर्ण चीजें गँवाई जारही हैं। आज पैसे की महिम को जो इतना ऊँचा स्थान दिया जा रहा है य जीवन कला के सिद्धान्तों से विपरीत है। इस मा पर चलने वाले, दिन रात पैसे की चिन्ता में घुल वाले. व्यक्ति एक निरर्थक अशांति का बोझ सि पर लादते हैं, आवश्यकता से अधिक जमा हुआ पैसा आनन्द नहीं देता वरन् नाना प्रकारके अनिष्ट खतरे. पाप एवं कुविचारों को उत्पन्न करता है अध्यात्म मार्ग के पथिकों को मध्यम श्रेणी का सद्‌ग्रहस्थ बनने का लक्ष सामने रख कर धन उपार्जन करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह लक्ष्य आसानी से पूरा भी हो जाता है। अमर्यादित धनी बनने की लालसा कभी पूरी होने वाली नहीं है क्योंकि सम्पत्ति वृद्धिके साथ साथ वह तृष्णा भी बढ़ती जाती है। फिर यह बात भी है कि ईमानदारी के साथ कोई व्यक्ति बहुत बड़ा धनी आसानी से हो भी नहीं सकता। धन लालसा मे अन्धे होकर अनर्थ करने वाले व्यक्ति ही अधिकांश में धनी पाये जाते हैं।

सुख शान्ति का सन्तुष्ट जीवन जीने की इच्छा करने वाले पाठको! जीवन की चतुर्मुखी उन्नतिकरो उन रसों का भी आस्वादन करो जो अमीर गरीब सभी के लिये समान रूप से इस सृष्टि में मौजूद हैं। अपनी शक्तियां और प्रवृत्तियों को उनकी ओर भी लगाओ. पैसे की अति लोलुपता तृष्णा और चिन्ता कम करो। अर्थोपार्जन के लिए मर्यादित शक्तियाँ व्ययकरो सीमित समय लगाओ। बचा हुआ समय उन कामों में लगाओ जो आन्तरिक उल्लास को प्रोत्साहन देते हैं जो लोक और परलोक को आशा मय, उज्वल एवं सुख शांति से परिपूर्ण बनाते हैं।

वासना की तृप्ति का तात्पर्य।

(प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्)

मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा हमें मनुष्य की स्वयंभू वृत्तियों (Instincts) तथा अनेक वासनाओं का ज्ञान होता है। मनोविज्ञान मनुष्य को एक उन्नत पशु के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। वह हमें बताता है कि कितनी भावनाएँ अतृप्त इच्छाएँ भावना ग्रन्थियों के रूप में अचेतन मन में पड़ी रहती हैं। जिस व्यक्ति के मानसिक संस्थान में ईर्षा, द्वेष, क्रोध, वासना, मद, मत्सर, छिद्रन्वेषण, से संश्लिष्ट मानसिक गाठें जितनी ही अधिक संख्या में प्रस्तुत रहती हैं, उसी अनुपात में इस मनुष्य का हृदय कलुषित कहा जायगा। ऐसा व्यक्ति जिस कार्य में हाथ डालता है सदा संशयापन्न रहता है, हृदय में पाप का डर लगा रहता है। अतएव, वह उस कार्य को छोड़ कर पुनः नवीन कार्य आरंभ करता है। उसमें भी पूरी तरह लग नहीं पाता। वह अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रह पाता।

जहां मनोविज्ञान हमें मनुष्य के अन्तस्थल के अनेक विकार स्पष्ट करता है, अन्तर्द्वन्द्व के रहस्य समझाता है। वासना का तांडव, इच्छा का घात-प्रतिघात, इन्द्रिय भोग का परिणाम बताता है, वहां साथ ही वह वासना के रूपान्तर के उच्च स्तर (Higher channels) भी स्पष्ट करता है। मनुष्य पशु है। अतः उसमें पशुत्व की वासनाएँ होना अवश्यम्भावी हैं। इस मनुष्य रूपी पशु ने बहुत उन्नति की है, पशुत्व से देवत्व की ओर चला है किन्तु फिर भी उसमें पशुत्व का कुछ अंश शेष है। मनोविज्ञान यह नहीं चाहता कि आप वासना की तृप्ति के लिए पशुमय जीवन व्यतीत कीजिए, अथवा "भोगवाद" को ही जीवन का प्रधान लक्ष्य बना लीजिए। वह तो कहता है कि वासना को संयत कर उसे प्रकाशित होने के उच्चतर देवोपम मार्ग दीजिए। इन्द्रियों को निम्न क्षेत्रों से उठा कर ऊँचे मार्ग दीजिए। पशुत्व की श्रेणी से उठिये और वृत्तियों को पवित्रता से प्रकाशित कीजिए।

वासना को पशु की तरह प्रकट करना समाज, देश, राष्ट्र विश्व तक के लिए हानिकर है। यदि सब के सब मनुष्य वासना की पशु वाली तृप्ति करने निकलें, तो कदाचित् सभ्यता का वही प्रारम्भिक काल फिर से आजाय, जिससे हम उन्नति की ओर बढ़े थे। "वासना" तो सृजनात्मक (Creative energy) शक्ति है। इस शक्ति का उपयोग आप उच्च या निम्न, किसी भी भांति कर सकते हैं। आपके पास शुद्ध घृत है। उसे रेत में मिलाकर रेत को चिकना कर लीजिए। यह उस शक्ति का बुरा प्रयोग होगा। उसी से मिष्ठान्न इत्यादि उत्तम वस्तुएँ भी बना सकते हैं। वासना की शक्ति का जो दुष्प्रयोग करते हैं, या उसे "भोगवाद" का पर्य्याय मानते हैं वे भारी भूल करते हैं।

मनुष्य पशुओं का सम्राट् है। वह सम्राट कैसे बना? उसने इन्द्रिय निग्रह, संयम, इन्द्रिय दमन, सदाचार द्वारा अपनी शक्ति को व्यर्थ व्यय हो जाने से रोका। अन्य निम्न कोटि के पशुओं की बहुत सी शक्ति निरर्थक भोगवाद में खर्च होगई। फलतः वे यों ही रह गए। मनुष्य ने वासना को कलाओं—संगीत, चित्रकारी कविता खुदाई, नक्काशी, विज्ञान, ज्ञान की प्राप्ति में व्यय किया। निम्न मार्गों से बचा कर उच्च भूमिका में लगाया। आज उस इन्द्रिय निग्रह, सदाचार एवं संयम के चमत्कार विश्व में हम आश्चर्य भरी आंखों से देख रहे हैं।

मनोविज्ञान कहता है—हे मनुष्य, तू पशुओं का राजा अपनी वासनाओं के रूपान्तर से बना है। निरन्तर नीचे से ऊपर की ओर बढ़ और हानि-

कारक क्षेत्रों से बचा कर वासना रूपी शक्ति को उच्च कलाओं (Fine Arts) में व्यय कर। ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, संयम सदाचार—ये ऐसी रीतियां तेरे पास हैं, जिनकी सहायता से तू अपरिमित शक्तियों का संयम कर सकता है। ये विधियाँ तुझे रंक से राजा बना सकती हैं। ये तुझे शक्ति संचय का दिव्य संदेश देती हैं।

वासना की निम्न प्रकार की तृप्ति में पशुओं की तरह जुटा रहने वाला कलुषित मन आत्मा को यन्त्रणा देने वाला घोर नर्क है। ऐसा व्यक्ति अपनी पशुत्व की श्रेणी (Stage) में ही पड़ा हुआ है जब कि उसके आत्म संयमी भ्रातागण बहुत दूर निकल गए हैं।

पाप, विकार तथा, आत्मघात की इच्छा उसी मनुष्य के मन में उठती है, जिसके मन में दूसरे के विनाश करने की इच्छा आई है। मनोविज्ञान हमें बतलाता है कि दूसरे को मारने की प्रवृत्ति तथा, अपने आपको मारने की इच्छा का मूल एक ही है। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त उस आध्यात्मवाद का समर्थन करता है जिसमें बताया गया है कि निज कल्याण दूसरों के कल्याण में ही निहित है। झूठ बोलने, दूसरों का गला काटने, या अत्याचार कर वासना तृप्ति से कोई मनुष्य सभ्य नहीं बन सकता। स्वार्थ परता, ईर्षा एवं द्वेष के कारण ही अन्तर्द्वन्द्व चलते हैं और मनुष्य दूसरे की निंदा करता है।

वासना को उच्च मार्गों में प्रकाशित होने का अवसर देकर ही हम आत्मोन्नति कर सकते हैं। सर्व प्रथम सदाचार संयम, इन्द्रिय निग्रह से वासना को निम्न मार्गों से रोकिये, व्यर्थ अपनी शक्ति का अपव्यय न कीजिए फिर उस संग्रहीत शक्ति को दूसरों के हित, समाज सेवा, ललितकलाओं की प्राप्ति में, ज्ञान विज्ञान के संचय में, व्यय कीजिए। आपके हृदय में दूसरों के प्रति जो अभद्र विचार आते हैं, उन्हें विश्वप्रेम, भ्रातृभाव की विपरीत भावनाओं से सुसंस्कृत कीजिए। जो सदाचार के मार्ग में लग कर दूसरों के हित चिंतन में मग्न रहता है, उसके अन्तर प्रवेश में उपरोक्त प्रकार की ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध आदि की जटिल ग्रन्थियां उत्पन्न ही नहीं होती। भगवान् श्रीकृष्ण का प्रवचन है—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥

कल्याण मार्ग में जाने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। अतः वासना की तृप्ति का वास्तविक अर्थ है उसे उच्च आत्म कल्याण के मार्ग में खोल देना, शुभचिंतन, शुभ कार्यों में व्यय करना, नीचे से ऊपर की ओर उठना, पशुत्व से देवत्व प्राप्त करना। वासनाओं की तृप्ति का अर्थ है उनका शोध आत्मविद्या द्वारा ही संभव है।

रसायनें फिर प्राप्त हो सकेंगी।

गत वर्ष दो रसायनें बिना मूल्य पाठकों को दी गई थी। उनसे सेवन करने वालों को जो आशातीत लाभ हुए, उससे हम लोग भी चकित हैं। 'आज रसायन'—मस्तिष्क, हृदय और वीर्य के दोषों को दूर करती तथा इनको पुष्ट बनाती है। तथा गर्भ रसायन से स्वस्थ, सुन्दर एवं प्रतिभाशाली संतति प्राप्त होती है।

गत छै महीने से यह दोनों रसायनें समाप्त हो गई थीं। इससे सैकड़ों पाठकों के संमुख हमें विवशता प्रकट करनी पड़ी। अब जाड़ा समाप्त होते ही पर्वतीय स्थानों से वे जड़ी बूटियां मंगाई गई हैं। संभवतः २० मई तक दोनों चीजें तैयार होजायगी। जो पाठकों को बिलकुल बिना मूल्य मिलेगी। एक व्यक्ति को एक ही चीज दी जायगी। रजिस्ट्री पार्सल खर्च, पैकिंग व्यवस्थापत्र आदि का कुल खर्च छै आने है। जो टिकट के रूप में नहीं मनीआर्डर से भेजना चाहिए। क्योंकि टिकट बीच में ही निकल जाते हैं।

—मैनेजर 'अखंड-ज्योति' मथुरा।

अहिंसा।

योग के आठ अङ्गों में पहला अङ्ग 'यम' है। अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पाँच यम कहे जाते हैं। इन पंक्तियों में प्रतिमास एक एक करके पांचों की विवेचना करेंगे। नीचे की पंक्तियों में अहिंसा पर प्रकाश डाल रहे हैं।

साधारण रीति से 'दुख न देने' को अहिंसा कहते हैं। 'हिंसा' का अर्थ है मारना, सताना, दुख देना। 'अ' का अर्थ है 'रहित'। इस प्रकार अहिंसा का अर्थ हुआ, न मारना, न सताना दुख न देना। ऐसे कार्य जिनके द्वारा किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुंचता हो हिंसा कहलाते हैं इसलिए उनका करना अहिंसा व्रत पालन करने वाले के लिए त्याज्य है। महात्मा गान्धी के मतानुसार—कुविचार मात्र हिंसा है उतावलापन हिंसा है मिथ्याभाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है. किसी का बुरा चाहना हिंसा है जिसकी दुनियां को जरूरत है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है इसके अतिरिक्त किसी को मारना, कटु वचन बोलना, दिल दुखाना, कष्ट देना तो हिंसा है ही। इन सब से बचना अहिंसा-पालन कहा जायगा।

सामान्य प्रकार से उपरोक्त पंक्तियों में अहिंसा का विवेचन हो गया पर यह अधूरा और असमाधान कारक है। कोई व्यक्ति लोगों के संपर्क से बिलकुल दूर रहे और बैठे बैठे भोजन वस्त्र की पूरी सुविधाऐं प्राप्त करता रहे तो शायद किसी हद तक ऐसी अहिंसा का पालन कर सके, पूर्ण रीति से तो तब भी नहीं कर सकता क्यों कि सांस लेने में अनेक जीव मरेंगे पानी पीने में सूक्ष्म जल जन्तुओं की हत्या होगी, पैर रखने में, लेटने में कुछ न कुछ जीव कुचलेंगे, शरीर और वस्त्र शुद्ध रखने में जुएं आदि मरेंगे, पेट में कभी कभी कृमि पड़ जाते हैं मल त्यागने पर उनकी मृत्यु हो जायगी। स्थूल हिंसा से कुछ हद तक बच जाने पर भी उस एकान्त सेवी से पूरी अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। तब क्या किया जाय ? क्या आत्म हत्या करलें ? या योग मार्ग की पहली ही सीढ़ी पर चढ़ना असंभव समझ कर निराश हो बैठें ?

केवल शब्दार्थ से अहिंसा का भाव नहीं ढूंढा जा सकता, इसके लिए योगिराज कृष्ण द्वारा अर्जुन को दी हुई व्यवहारिक शिक्षा का आश्रय लेना पड़ेगा। अर्जुन देखता है कि युद्ध में इतनी अपार सेना की हत्या होगी, इतने मनुष्य मारे जायँगे, यह हिंसा है इससे मुझे भारी पातक लगेगा, वह धनुष बाण रखकर रथ के पिछले भाग में जा बैठता है और कहता है कि—हे अच्युत ! मैं थोड़े से राज्य लोभ के लिए इतना बड़ा पाप न करूँगा, इस युद्ध में मैं प्रवृत्त न होऊँगा। भगवान कृष्ण ने अर्जुन की इस शङ्का का समाधान करते हुए गीता के अठारह अध्यायों में योग का उपदेश दिया, उन्होंने अनेक तर्क, प्रमाण, सिद्धान्त और दृष्टिकोणों से उसे यह भली प्रकार समझा दिया कि कष्ट न देने मात्र को अहिंसा नहीं कहते दुष्टों को, दुराचारियों, अन्यायी, अत्याचारियों को, पापी और पाजियों को मार डालना भी अहिंसा है। जिस हिंसा से अहिंसा का जन्म होता, जिस लड़ाई से शान्ति की स्थापना होती, जिस पाप से पुण्य का उद्भव होता है उसमें कुछ अनुचित या अधर्म नहीं है।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा इस मोटी बुद्धि को छोड़ और सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर, अहिंसा की प्रतिष्ठा इसलिए नहीं है कि उससे किसी जीव का कष्ट कम होता है, कष्ट होना न होना कोई विशेष महत्व की बात नहीं है, क्योंकि शरीरों का तो नित्य ही नाश होता है और आत्मा अमर है, इसलिए मारने न मारने में हिंसा अहिंसा नहीं है। अहिंसा का तात्पर्य है 'द्वेष रहित होना'। निजी राग द्वेष से प्रेरित होकर संसार के हित अनहित का विचार

किये बिना जो कार्य किये जाते हैं वे हिन्सा पूर्ण हैं। यदि लोक कल्याण के लिए, धर्म की वृद्धि के लिए किसी को मारना पड़े या हिन्सा करनी पड़े तो उसमें दोष नहीं है। अर्जुन ने भगवान् के बचनों का भली प्रकार मनन किया और जब उसकी समझ में अहिन्सा का वास्तविक तात्पर्य आ गया तो महाभारत में जुट पड़ा। अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ तो भी अर्जुन को कुछ पाप न लगा।

एक आप्त वचन है कि—"वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति" अर्थात् विवेक पूर्वक को हुई हिंसा, हिंसा नहीं है। जिव्हा की चाटुकरता के लोभ में निरपराध और उपयोगी पशु पक्षियों का मांस खाने के लिए उनकी गरदन पर छुरी चलाना पातक है, अपने अनुचित स्वार्थ की साधना के लिए निर्दोष व्यक्तियों को दुख देना हिंसा है। किन्तु निस्वार्थ भाव से लोक कल्याण के लिए तथा उसी प्राणी के उपकार के लिए यदि उसे कष्ट दिया जाय तो वह हिंसा नहीं वरन् अहिंसा ही होगी। डाक्टर निस्वार्थ भाव से रोगी की वास्तविक सेवा के लिए फोड़े को चीरता है एक न्याय मूर्ति जज समाज की व्यवस्था कायम रखने के लिए डाकू को फाँसी की सजा का हुक्म देता है, एक धर्म प्रचारक अपने जिज्ञासु साधक को आत्म कल्याण के लिए तपस्या के कष्ट कर मार्ग में प्रवृत्त करता है। मोटी दृष्टि में देखा जाय तो यह सब हिंसा जैसा प्रतीत होता है पर असल में यह सच्ची अहिंसा है। गुण्डे बदमाशों को क्षमा कर देने वाला, हरामखोरों को दान देने वाला, दुष्टता को सहन करने वाला, देखने में अहिंसक सा प्रतीत होता है पर असल में वह घोर पातकी, हिंसक हत्यारा है। क्योंकि बुजदिली और हीनता को अहिंसा की टट्टी में छिपाता हुआ, अप्रत्यक्ष रूप से पाजीपन की मदद करता है, एक प्रकार से अनजाने में दुष्टता की जहरीली बेल को सींचकर दुनियाँ के लिए प्राण घातक फल उत्पन्न करने में सहायक बनता है, ऐसी अहिंसा को जड़ बुद्धि अज्ञानी ही अहिंसा कह सकते हैं।

पातञ्जलि योग दर्शन के पाद २ सूत्र ३५ में कहा गया है कि—"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ बैर त्यागः" अर्थात् अहिंसा की साधना से उस योगी के निकट—मनमें—बैर भाव निकल जाता है। बैर भाव, द्वेष, प्रतिशोध की दृष्टि से किसी के चित्त को दुखाना, या शरीर को कष्ट देना सर्वथा अनुचित है, इस हिंसा से सावधानीके साथ बचना चाहिए। अहिंसक का अर्थ है प्रेम का पुजारी, दुर्भावना से रहित। सद्भावना और विवेक बुद्धि से यदि किसी को कष्ट देना आवश्यक जान पड़े तो अहिंसा की मर्यादा के अन्तर्गत उसकी गुंजायश है। अहिंसक को बैर भाव छोड़ना होता है, क्रोध पर काबू करना होता है, निजी हानि लाभ की अपेक्षा कुछ ऊँचा उठना पड़ता है, उदार निष्पक्ष, और न्याय मूर्ति बनना पड़ता है, तब उस दृष्टिकोण से जो भी निर्णय किया जाय वह अहिंसा ही होगी। परमार्थ के लिए की हुई हिंसा को किसी भी प्रकार अहिंसा से कम नहीं ठहराया जा सकता।

महात्मा गान्धी का कथन है कि—"अहिंसा से हम जगत् को मित्र बनाना सीखते हैं, ईश्वर की—सत्य की—महिमा अधिकाधिक जान पड़ती है संकट सहते हुए भी शान्ति और सुख में वृद्धि होती है, हमारा साहस—हिम्मत बढ़ती है। हम कर्तव्य—अकर्तव्य का विचार करना सीखते हैं। अभिमान दूर होता है, नम्रता बढ़ती है। परिग्रह सहज ही कम होता है और देह के अन्दर भरा हुआ मैल रोज कम होता जाता है।" अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है। वैर त्यागकर, प्रेम भावना को आत्मीयता को प्रमुख स्थान देते हुए बुराई का मुकाबिला करना अहिंसा है। बहादुरी, निर्भीकता, स्पष्टता, सत्यनिष्ठा, इस हद तक बढ़ा लेना कि तीर

तलवार उसके आगे तुच्छ जान पड़ें अहिंसा की साधना है। शरीर की नश्वरता को समझते हुए उसके न रहने का अवसर आने पर विचलित न होना अहिंसा है। अहिंसक की दृष्टि दूसरों को सुख देने की होती है, अधर्म और अज्ञान को हटाने से ही दुखकी निवृत्ति और सुख की प्राप्ति हो सकती है अहिंसा का पुजारी अपने और दूसरे के अधर्म और अज्ञान को हटाने का अविचल भाव से प्रवल तम प्रयत्न करता है जिससे सच्चा और स्थायी सुख प्राप्त हो, इस महान् कार्य के लिए यदि अपने को या दूसरे को कुछ कष्ट सहना पड़े तो उसे उचित समझकर अहिंसक उसके लिए सदा तैयार ही रहता है।

सा विद्या या विमुक्तये।

विद्या किसे कहते हैं? इसकी परिभाषा करते हुए शास्त्रकारों ने सूत्र रूप में कह दिया है कि—'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे। जिसके द्वारा हम रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार आदि की दासता से मुक्ति प्राप्त कर सकें वह विद्या है। ऐसी विद्या को प्राप्त करने वाले विद्वान कहे जाते हैं।

प्राचीन समय में आज के जितने स्कूल कालेज न थे। पढ़ने वाले छात्रों को एक गधे के बोझ की बराबर पुस्तकें लाद या स्कूल न जाना पड़ता था। दिन रात आवश्यक बातें रटाने की पद्धति की आज की शिक्षा प्रणाली का कहीं दर्शन भी न था। तो भी लोग विद्वान होते थे। उपयोगी शिक्षा और विद्या का इतना अधिक प्रचलन था कि हर ग्राम और नगर स्वत: एक कालेज था। वहां के निवासी अपने घर वालों, कुटुम्बियों और नगर निवासियों में ही बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। तोता रटंत की अपेक्षा जीवन की उपयोगी और आवश्यक शिक्षा क्रियात्मक रीति से प्राप्त की जाती थी। प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुभव द्वारा वे तथ्य शिक्षार्थियों को भली प्रकार हृदयंगम हो जाते थे।

मेघनाद, कुम्भकरण, अंगद, हनुमान, जामवन्त से योद्धा, अर्जुन, भीम, भीष्म, द्रोण जैसे महारथी बी० ए० पास थे या मेट्रिक्युलेट थे इसका कुछ पता नहीं चलता। दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा, खगोल, भूगर्भ, प्राणिशास्त्र, रसायन, शिल्प, वास्तु, अर्थ, नीति, धर्म, अध्यात्म आदि विषयों के विशेषज्ञ घर घर में होते थे। इन विषयों की वे क्रियात्मक जीवन में अनुभव पूर्ण शिक्षा प्राप्त करते थे और अपने विषय के सुयोग्य ज्ञाता बन जाते थे। पुरुष के समान स्त्रियां भी अपनी विद्वत्ता में शिक्षा में आगे चढ़ी बढ़ी थी। स्त्रियों के कालेज कहीं थे इसका पता इतिहास के पन्ने नहीं देते पर इतना जरूर बताते हैं कि आज की 'कालेज गर्ल्स' की अपेक्षा उस समय की ललनाऐं हर दृष्टि से अधिक सुशिक्षित होतीं थीं।

कबीर, रैदास, दादू आदि संत शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए कहे जा सकते हैं। वे साहित्य और व्याकरण के उतने विद्वान न थे तो भी आज के एल० टी० प्रोफेसरों की अपेक्षा अनेकी विद्या वास्तविक थी। अकबर पढ़े-लिखे न थे, पंजाब केशरी महाराणा रणजीतसिंह की शिक्षा नहीं के बराबर थी, छत्रपति शिवाजी शिक्षित न थे पर जो कुछ उनने सीखा था वह आज के फटे हाल ग्रेजुएटों की अपेक्षा बहुत उपयोगी एवं वास्तविक था।

हम क्या पढ़ें? एवं बच्चों को क्या पढ़ावें? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर शास्त्रकार इस प्रकार देते हैं कि जिस ज्ञान के आधार पर दुखदायी बन्धनों से छुटकारा प्राप्त किया जा सके वही विद्या है, उसे ही पढ़ो। रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता,

दासता, ग़रीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार आदि के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता-शक्ति जिस उपाय द्वारा मिले वही विद्या है उसे ही सीखना और सिखाना उचित है।

आज की शिक्षा उपरोक्त कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त बिलकुल निकम्मी सिद्ध होती है। जीवन का एक तिहाई भाग स्कूल कालेजों के कैद खाने में व्यतीत करने के बाद हमारे बालक जब बाहर आते हैं तो वे उपरोक्त बन्धनों से छूटना तो दूर उलटे जब स्कूल में प्रवेश हुए थे उसकी अपेक्षा भी अधिक जकड़े हुए निकलते हैं। शील, स्वास्थ्य, संयम, विवेक, विनय, श्रद्धा, उत्साह, वीरत्व, सेवा, सहयोग आदि विद्या द्वारा प्राप्त होने वाले स्वाभाविक फल जब उनमें दृष्टिगोचर नहीं होते तो फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होंने विद्या प्राप्त की है या वे विद्वान हो गये हैं।

अन्धानुकरण करके अपने बालकोंके इस निरर्थक एवं हानिकर शिक्षा का भार लादकर उनके स्वास्थ्य और जीवन विकाश से रोकना उचित नहीं। इतनी खर्चीली, इतनी श्रम साध्य शिक्षा जब विद्या से प्राप्त होने वाले सुफल की उपस्थित नहीं करती वरन् उलटे परिणाम उत्पन्न करती है-तो उसे अविद्या या कुशिक्षा ही कह सकते हैं। इस कुशिक्षा में बालकों के जीवन के विकाशोन्मुखी—प्रमुख भाग बर्बाद कर दिये जाने पर भविष्य में वे कोई महत्व पूर्ण कार्य कर सकेंगे इसकी संभावना बहुत कम रह जाती है। किशोरावस्था का पुष्प, तोता रटन्त में रात-रात भर जागकर जब मसल डाला जाय तो फिर उस पर उत्तम फल लगने की क्या आशा की जा सकती है?

उच्च शिक्षा के नाम पर प्रचलित वर्तमान अनुपयोगी शिक्षा से हमारा कुछ भी भला नहीं हो सकता। अब हमें ऐसी शिक्षा का निर्माण करना होगा जो क्लर्क बाबू ढालने की फैक्टरी न रह कर शिक्षार्थी के जीवन विकाश में सर्वतोमुखी सहायता प्रदान करे। उस शिक्षा में अनावश्यक पुस्तकों का गर्दभ भार न रह कर अनुभवी क्रिया कुशल आचार्यों द्वारा जीवनोपयोगी व्यवहारिक शिक्षा देने की व्यवस्था होगी। वही शिक्षा हमारे बालकों को सफल योद्धा, व्यापारी, नेता, सेवक, शिल्पी वैज्ञानिक आदि बना सकेगी। उस धार्मिक आधार पर खड़े हुए शिक्षण से ही मनुष्यों के बीच सच्चे प्रेम और सद्भाव की स्थापना होगी। और सुख शान्तिमय लोक परलोक का निर्माण होगा।

आइए, हम लोग ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करें. उसके निर्माण की आज के अन्धकार युग में सर्वोपरी आवश्यकता है।

खोया हुआ धन उद्योग से फिर प्राप्त होगा, नष्ट हुआ धन आरोग्य चिकित्सा द्वारा फिर मिलेगा, भूला हुआ ज्ञान अभ्यास से फिर ताजा होजायेगा परन्तु खोया हुआ समय फिर प्राप्त न होगा। इसलिये एक एक कण का सदुपयोग करना चाहिए।

× × × ×

मनुष्य को पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि मैं क्या नहीं करूँगा। ऐसा निश्चय करने से शेष जो कुछ करना है वह अवश्य दृढ़ता के साथ किया जा सकता है।

× × × ×

शब्दों में अपार शक्ति है। उनका दुरुपयोग होने से प्राण घातक संकट तक आसकते हैं। इसलिए अपनी जबान पर पहरा बिठा दो कि एक भी शब्द ऐसा न निकलने पावे जिससे अनिष्ट की संभावना हो।

× × × ×

इस संसार में परमात्मा के विशिष्ट प्रतिनिधि देवतागण भी मौजूद हैं—वे हैं-सदाचारी एवं परोपकारी सत्पुरुष।

पति और पत्नी।

(लेखक—प्रो० भगवत दयाल एम० ए०)

सराहनीय पति—

१—वही पति सराहनीय है कि जो अपना चाल चलन दर्पण की तरह स्वच्छ रखता है और जो अपने दिल के आईने पर किसी प्रकार का कोई धब्बा नहीं डालता है।

२—वही पति धन्यवाद योग्य है कि जो कभी पर नारी पर बुरी निगाह—सपने में भी नहीं डालता है।

३—वही पति योग्य है कि जो अपनी पत्नी को अपने से प्रथक कोई ज़ात्ता नहीं समझता है।

४—वही पति देवता है जो अपनी स्त्री की बुराई में अपनी बुराई और उसकी बड़ाई में अपनी बड़ाई मानता है और कभी किसी के सामने उसकी निन्दा नहीं करता।

५—वही पति काबिल तारीफ है कि जो अपनी स्त्री को इज्जत और परवाह के साथ रखता है। जो अपनी स्त्री को अपने राज्य की रानी मानता है।

६—वही पति योग्य है कि जो बीमारी की हालत में अपनी स्त्री की सेवा करता है।

७—वही पति-पति है कि जो अपनी स्त्री के सम्बन्धियों का आदर सत्कार करता है। उनकी निन्दा नहीं करता—और उनका अपमान नहीं करता यानी किसी भी प्रकार से अपनी स्त्री का दिल नहीं दुखाता है।

८—वही पति आदरणीय है कि जो अपनी संतान पर समदृष्टि रखता है फिर चाहे वह लड़का हो या लड़की। साथ ही जो उनके स्वास्थ्य पर, उनके चाल चलन पर, और उनकी शिक्षा पर पर्याप्त दृष्टि रखता है।

९—वही पति पूज्यनीय है कि जो अपनी सन्तान के सामने कोई ऐसी बात नहीं कहता कि जिससे उनकी पूज्य माता का अनादर होता हो।

१०—वही पति सराहना योग्य है कि जो अपनी भूल मान लेता हो और अपनी गलती पर पछतावा करता हो।

११—वही पति अपनी स्त्री की पति रखता है कि जो उसे हर तरह से तृप्त रखता है।

सराहनीय पत्नी—

१२—वही स्त्री धन्य है कि जो अपने पति को ही अपना प्रियतम यानी सबसे ज्यादा प्यारा मानती हो।

१३—वही स्त्री देवी है कि जो परमात्मा के बाद अपने पति को ही पूज्य और आदरणीय समझती हो।

१४—वही पत्नी सराहना योग्य है कि जो अपनी पति की सेवा हृदय से करती हो और उसकी आज्ञा में श्रद्धा पूर्वक चलती हो।

१५—वह पत्नी कल्याण पाती है कि जो अपने को कष्ट देकर भी अपने पति को सुखी बनाने की कोशिश करती हो।

१६—वही पत्नी-पत्नी है कि जो अपने माता पिता के सामने अपने पति का पक्ष लेती हो और उसकी निन्दा सहन न कर सकती हो।

१७—वही पत्नी पूज्य है कि जो अपने पति के माता पिता को अपने माता पिता के समान पूज्य मानती हो।

१८—वही पत्नी सराहनीय है जो अपने पति का कटु वचन सुन कर भी अपना उत्तर मधुर देती है।

१९—वही पत्नी गृहलक्ष्मी है कि जो अनुचित फरमाइशों के द्वारा अपने पति को परेशान नहीं करती है।

२०—वही पत्नी पतिव्रता है कि जो अपने पति की आज्ञा के बिना किसी से मिलना जुलना पसंद

शक्तियों का अपव्यय न करो।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध धन कुबेर--जिनकी संपत्ति अरबों खरबों रुपया है—हेनरी फार्ड ने एक बार कहा था—"धन कुबेर होने पर भी मुझे जीवन में सुख नहीं है। जब मैं अपने लम्बे चौड़े कारखाने में बेचारे गरीब मजदूरों को रूखा सूखा और बिना स्वाद का भोजन बड़ी उत्सुकता और प्रसन्नता के साथ करते हुए देखता हूं तो उन पर मुझे ईर्षा होती है। तब मेरा जी चाहता है कि काश, मैं धन कुबेर होने की अपेक्षा एक साधारण मजदूर होता।"

मोटे तौर से देखने पर यह बात अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होती है कि एक असीम सम्पत्ति का स्वामी जिसके यहां सभी प्रकार के ऐश आराम के साधन प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं एक मजूर के भाग्य पर ईर्षा क्यों करता है? क्या वह सचमुच मजूर की अपेक्षा अधिक अभाव ग्रस्त है? इतना धन होते हुए भी कोई क्यों मजूरों के भाग्य पर ईर्षा करते हैं?

नहीं करती। और अपनी समस्त इच्छाओं को पति की इच्छा के आधीन कर देती है।

२१—वही पत्नी-तारक के योग्य है कि जो अपने श्रृङ्गार में आलस्य नहीं करती। और जो अपने रूप - शील के द्वारा अपने पति को अपने पर मोहित रखती है।

२२—वही पत्नी—साधु है कि जो अपने पति के बल वीर्य की रक्षा करती है और उसे शीघ्र ही चूस कर सुखा डालना नहीं चाहती।

२३—वही स्त्री सौभाग्यवती है कि जो अपनी संतान को योग्य बनाने में दत्त चित्त रहती है।

२४—वही पत्नी आदरणीय है कि जो आमद से कम खर्च करती है और धन को जमा करती है।

विवेक पूर्वक विचार करने से पता चलता है कि केवल माल धन ही ऐसी वस्तु नहीं है जिससे मनुष्य सुखी रह सके। बात यह है कि योग्य पदार्थ उसी को आनन्द दे सकते हैं जिसमें उपभोग की शक्ति हो। उपभोग की शक्ति क्षीण या विनष्ट हो जाने पर भोज्य संपदा कुछ भी सुख नहीं दे पाती। जिसकी पाचन शक्ति नष्ट होगई है वह दाल दलिये का पथ्य ही ले सकता है। छत्तीस प्रकार के व्यंजनों से सजा हुआ थाल उसके लिए विष के तुल्य है। उस थाल का आनन्द तो वही उठा सकता है जिसकी पाचन शक्ति तीव्र है। आँखों की ज्योति चले जाने पर अनेक प्रकार के सुरम्य दृश्य, चित्र, खेल तमाशे आदि दर्शनीय पदार्थों का कोई मूल्य नहीं। नाक ठीक काम न करती हो बढ़िया इत्र और साधारण तेल एक समान है। काम सेवन की शक्ति नष्ट हो जाय, नपुंसकता आ घेरे तो रूप यौवन सम्पन्न रमणियां उस सुख का रसास्वादन नहीं कर सकतीं।

उपभोग सामर्थ्य न होने पर भोग्य सामिग्री निरर्थक एवं निरुपयोगी हो जाती है इतना ही नहीं उस सामिग्री का होना उलटा खतरनाक बन जाता है। नपुंसक पति को नव यौवना पत्नी उसके लिए एक खतरा है। बीमार आदमी के समीप सुस्वादु भोजनों का जमाव उसके लिए कोई दुर्घटना उपस्थित कर सकता है। इस दृष्टि से हेनरी फोर्ड का कथन सत्य था। उन्होंने पैसा कमाने की धुन में अपने पेट को खराब कर लिया था। एकाध बिस्कुट, छटांक दो छटांक फलों का रस वे पचा पाते थे। फोर्ड महोदय जब अपनी फैक्टरी के मजूरों को मोटे झोटे अनाज की रोटियां भर पेट खाते हुए देखते थे तो उन्हें उन मजूरों के भाग्य पर ईर्षा होती थी और कहते थे—'काश मैं धन कुबेर होने की अपेक्षा एक साधारण मजूर होता।'

स्वस्थता कमाना और उसकी रक्षा करना, अन्य सभी सम्पत्तियों के उपार्जन और रक्षण से

मूल्यवान है। कई व्यक्ति विद्वान बनते हैं पर इसे प्राप्त करने में इतनी जल्दबाजी करते हैं कि स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। कई व्यक्ति धनी बनते हैं पर उस प्रयास में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि शक्तियों के अपव्यय के कारण तन्दुरुस्ती खराब हो जाती है। स्वास्थ्य नष्ट होने के उपरान्त वह विद्या और संपत्ति उन्हें कुछ भी सुख नहीं दे पाती। कमजोरी और बीमारी से वे आये दिन ग्रस्त रहते हैं। तब फोर्ड की भांति वे सोचते हैं कि योग्य सामिग्रियों का संचय करने में हमने उपभोग शक्ति का बलिदान करके बड़ी भारी भूल की। इस भूल का पश्चाताप उन्हें शेष जीवन के दिन रो रो कर बिताते हुए करना होता है।

अनेक दृष्टियों से समृद्ध होना, भौतिक संपदाओं से सुसज्जित होना, हर मनुष्य को स्वभावतः प्रिय होता है और वह उचित तथा आवश्यक भी है। परन्तु इस उपार्जन की भी सीमा है। स्वास्थ्य की स्थिरता एवं सुरक्षा का ध्यान रखते हुए ही सब प्रकार की संपत्तियां उपार्जित करने का प्रयत्न करना चाहिए जब कार्यक्रम इस मर्यादा को उल्लंघन कर रहा हो और स्वास्थ्य पर उस अति परिश्रम का बुरा असर हो रहा हो तो तुरन्त ही सावधान होने की आवश्यकता है। स्वस्थता में जो सुख है वह हेनरी फोर्ड जितनी संपत्ति के बदले में भी प्राप्त नहीं हो सकता।

उपभोग सामिग्री का संयम पूर्वक उपयोग करने से शारीरिक शक्तियां ठीक प्रकार काम करती हैं। अति रसास्वादन का असंयम उस उपभोग शक्ति को ही नष्ट कर देता है। अति काम सेवन से नपुंसकता प्रमेह आदि रोग उत्पन्न होते हैं और अति के दंड स्वरूप उस शक्ति से सदा के लिए हाथ धोना पड़ता है। इसी प्रकार चटोरे व्यक्ति अपनी पाचन शक्ति को बिगाड़ लेते हैं और कड़ाके की भूख में भोजन करने के आनन्द से सदा के लिए वंचित हो जाते हैं। यही बात अन्य इन्द्रियों के बारे में भी है। इसीलिए शास्त्रकारों ने इन्द्रिय संयम पर विशेष जोर दिया है। इन्द्रिय संयम एक वैज्ञानिक विधान है जिसके द्वारा मनुष्य जीवन भर उपभोग शक्ति को कायम रख सकता है। ब्रह्मचर्य, व्रत, उपवास, मौन आदि आत्म निग्रह के अनेक विधि विधानों का उद्देश्य उन उपभोग शक्तियों को स्थिर रखना है जिनके द्वारा योग्य पदार्थों के आनन्द का रसास्वादन किया जा सकता है।

संसार में जिन्हें जीवन के अनेक आनन्दों का उपभोग करने की इच्छा है उन्हें शक्तियों के अनुचित अपव्यय से बचने का पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए। किसी प्रलोभन के आकर्षण में पड़कर जो लोग अपनी शारीरिक शक्तियों को अपव्यय करके गँवा देते हैं वे अन्त में हेनरी फोर्ड की तरह पछताते हैं तब सारी संपत्तियां मिल कर भी उन्हें वह आनन्द नहीं दे सकती जो स्वस्थता रहने पर अनायास ही मिल सकता था।

इस संसार में रहने का सच्चा तत्व ज्ञान यह है कि प्रतिदिन कमसे कम एक बार खिलखिला कर जरूर हँस लेना चाहिए।

× × ×

दूसरों की निन्दा सुनना हानिकारक है। क्योंकि वह झूठी हो तो व्यर्थ ही मन में भ्रम और दुर्भाव पैदा होकर अपनी मनः स्थिति की निंदा करते हैं। और यदि वह निन्दा सच्ची हो तो न विचारने लायक तुच्छ मनुष्य के संबंध में विचारने से अपनी समय-क्षति होती है।

× × ×

उबलते हुए दूध की तरह उफनने वाले क्रोध को रोकने की जिसमें सामर्थ्य है वही सच्चा सारथी है। और तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं।

× × ×

अग्निहोत्र और शिवलिंग।

परमात्मा भले बुरे सभी रूप में व्याप्त है, परन्तु पूजा के लिए उपयोगी तत्वों को ही ग्रहण किया गया है। पूजन, यज्ञ, अनुष्ठान में उपयोगी और उत्तम तत्व ही प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि अनुपयोगी, निकृष्ट और घृणित पदार्थ भी परमात्मा की वैसी ही कृति हैं जैसे के उत्तम पदार्थ। इसी प्रकार महत्व पूर्ण, सुन्दर, उपयोगी पदार्थों में ही परमात्मा की झांकी की जाती है यद्यपि हानिकर और असुन्दर पदार्थों में भी परमात्मा मौजूद है।

इस उपयोगिता बाद के अनुसार ऋषियों ने सबसे प्रथम ईश्वर को अग्नि रूप में देखा। आरंभिक युग में जब मनुष्य ने अग्नि को खोज निकाला तो यह आविष्कार उस समय असाधारण था। इसके अद्भुत शक्तिशाली, दिव्य शक्ति अग्नि को ईश्वर का प्रतिनिधि मान कर उसकी पूजा की गई।

आदि वेद, ऋग्वेद में प्रारंभिक मंत्र अग्नि की प्रार्थना में है।

"अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।"

"अग्ने नय सुपथारायेऽस्मान।।"

परम तेजस्वी एवं जीवन की अत्यंत उपयोगी अग्नि को विश्व के कोने कोने में ईश्वरीय भाव के साथ देखा गया। आदि यहूदी-इसराईली, चीनी, पारसी, रोमन ईसाई, यूनानी आदि के प्राचीन ग्रन्थों में अग्नि की प्रार्थना और पूजा के विषय में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध होता है। हजरत मूसा को तूर पर्वत पर परमात्मा के दर्शन अग्नि के रूप में हुए थे। यूनान तथा रोम के मंदिरों में अग्नि को निरन्तर प्रज्वलित रखा जाता था, उसे कभी बुझने न देते थे। पारसियों में तो अब भी अग्नि मन्दिर, आतिशकदे, धार्मिक भावना के साथ उसी प्रकार प्रतिष्ठित होते हैं जैसे कि ईसाइयों में गिरजे।

अग्नि की प्रज्वलित ज्योति को अखण्ड रूप से जलती रखने का आर्यों का धार्मिक कृत्य था। इसी अग्नि में नित्य पंच यज्ञ होते थे। इस अखण्ड अग्नि को गार्हस्पति अग्नि कह जाता था, जन्म से लेकर अन्त्येष्टि तक हर एक संस्कार इसी अग्नि द्वारा होता था। अब तक मृतक का दाह करने के लिए घर से ही अग्नि ले जाने की प्रथा उस गार्हस्पति अग्नि की महत्ता का स्मरण दिलाती है। सन्यासी लोग धूनी की अग्नि को बुझने न देना एक धार्मिक कृत्य मानते हैं।

इस अखंड अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए अग्नि कुण्ड के ऊपर एक तिपाई पर घृत से भरा हुआ घड़ा-घृत कुंभ--रख दिया जाता है। घड़े के पेंदे में एक छोटा छेद होता था जिसमें होकर थोड़ा थोड़ा घी चुचाता रहता था और उसके कारण अग्नि की लौ जलती रहती थी। घड़ा इतना ऊँचा रखा जाता था कि घी अग्नि तक पहुंचने में सौ बूंदों की लड़ी बन जाती थी।

—पूर्णं नारि प्रभर कुंभमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम्। अथर्व ३-१२-८

—एता अर्षन्ति शतव्रजाः... घृतस्य धाराः।

—एते अर्षन्त्युर्मयो घृतस्य मृगाइव।

—घृतस्य धाराः भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।

—अभि प्रवन्त समनेव योषा... अग्निं घृतस्य धाराः। ऋ० ४ ५८-५,८

इन श्रुतियों से अखण्ड अग्निज्योति प्रज्वलित रखने का उपरोक्त विधान भली प्रकार सिद्ध हो जाता है। मन्दिरों की ज्योति के स्वरूप वाले शिखर, शिर के ऊपर शिखा उसी ज्योति पूजा के चिन्ह हैं। किसी बड़े पर्व पर अग्निपूजन के लिए अनेक धार्मिक व्यक्ति अपनी अग्निज्योतियों तथा कुंभों को ले लेकर एकत्रित होते थे। उसे कुंभ पर्व कहते थे। अब भी प्रयाग, हरद्वार, उज्जैन आदि में कुंभ और कुंभी के मेले होते हैं। यद्यपि अग्नि पूजन के घृत कुंभ अब उन पर्वों पर नहीं पहुंचते तो भी

कुंभ या कुंभी नाम का होना एक ऐतहासिक तथ्य की स्मृति दिलाता है।

समय परिवर्तन शील है। अग्नि पूजन का वह विधान सुलभ न रहा। घृत की न्यूनता तथा अन्य कारणों से यह सब अधिक दिन तक चल न सका। तब चिन्ह पूजा चलाना उचित प्रतीत हुआ। अग्निज्योति के स्थान पर पत्थर की ज्योति शिखा स्थापित की गई। घृत कुंभ के स्थान पर जल कुंभ रखे जाने लगे। अग्नि कुण्ड के स्थान पर जलहरी बनाई गई। शैव कालके शिव भक्तों ने इस अग्नि पूजन के चिन्हावशेष को अपने धर्म चिन्हों में सम्मिलित कर लिया अग्नि का स्थान रुद्र ने ग्रहण कर लिया।

—रुद्रमग्नि उमा स्वाहाम् प्रदेशेषु महाबलम्।
महाभारत बन० २२८–५

—रुद्रमग्नि द्विजा प्राहुः।

—रुद्रास्य वन्हेः स्वाहायाः षणांस्त्रीणाञ्च भारत।
महा० बन० २२६-२७-३१

अग्नि का रुद्र रूप में परिवर्तन हुआ। तृतीय नेत्र खुलने से अग्निकाण्ड होकर कामदेव का जल जाना, ताण्डव नृत्य से भयंकर अग्नि उत्पन्न होकर प्रलय होना। शंकर का संहारक देव होना। आदि गाथाऐं रुद्र का अग्नि से संबंध बताती हैं। इस दृष्टि से वर्तमान शिव पूजन वैदिक अग्निहोत्रों का रूपान्तर प्रतीत होता है। प्रधान शिव मन्दिरों को 'ज्योतिर्लिङ्गम्" कहा जाना भी इसी की परिपुष्टि करता है।

———

अपनी ओर से उद्योग की पराकाष्ठा करनी चाहिए पर हार जीत को अधिक महत्व न देना चाहिये।

× × ×

यह लोहे का मोरचा (जंग) ही है जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप कर्म ही उसे दुर्गति तक पहुंचाते हैं। × ×

जोश के साथ होश।

(ले०–पंडित दीनानाथ भार्गव "दिनेश")

———

बुद्धि स्थिर करने के उपाय बताकर भगवान् कृष्ण ने यह निर्देश किया है कि इन्द्रियों के दास होकर नहीं, स्वामी होकर रहना चाहिए। संयम के बिना सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती। नित्य नए नए भोगों के पीछे दौड़ने का परिणाम दुःख और अशान्ति है।

श्री गीता पढ़ने सुनने या समझने की सार्थकता इसी में है कि इन्द्रियों पर संयम किया जाय। इन्द्रियों का वेग तथा प्रवाह में बह जाना मनुष्य धर्म नहीं है। किसी भी साधन योग, जप ध्यान इत्यादि का प्रारम्भ संयम बिना नहीं होता।

संयम के बिना जीवन का विकास नहीं होता। जीवन के सितार पर हृदयमोहक मधुर संगीत उसी समय गूँजता है, जब उसके तार नियम तथा संयम में बँधे होते हैं।

उपनिषदों में कहा गया है कि जिस घोड़े की लगाम सवार के हाथ में नहीं होती, उस पर सवारी करना खतरे से खाली नहीं है। संयम की बाग डोर लगाकर ही घोड़ा निश्चित मार्ग पर चलाया जा सकता है। ठीक यही दशा हृदयरूपी अश्व की है। विवेक तथा संयम द्वारा इन्द्रियों को आधीन करने पर ही जीवन यात्रा आनन्द पूर्वक चलती है।

उच्छृंखल युवक कभी कभी मानसिक सामाजिक और राष्ट्रीय बन्धनों को तोड़ देना चाहते हैं। यह भारी भूल है। जीवन में जोश के साथ होश की उसी प्रकार आवश्यकता है जैसे अर्जुन के साथ श्री कृष्ण की। अर्जुन में बल था परन्तु श्री कृष्ण की नीति और बुद्धि ने उसे हजार गुना बढ़ा दिया था।

———

दो उपयोगी प्राणायाम ।

(योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजी)

———

प्राणायाम करने की जगह सर्दीली या भीगी नहीं होना चाहिये, हवाका झपटा शरीर को अधिक जोरसे न लगे तथा बिलकुल हवा न लगे ऐसा स्थान नहीं होना चाहिये अर्थात् मध्यम हवा के आन होना चाहिये, गरमी के दिनों में अभ्यास करते समय शरीर पर जितने कपड़े कम हों उतना ही अच्छा, और जाड़े के दिनों में सर्दी शरीर को न लगे मात्र इतने कुरते कपड़े रखना चाहिये। जिसके फेफड़े अत्यंत कमजोर हों उन्हें प्राणायाम अत्यंत आहिस्ते से करना चाहिये, जिससे फेफड़ा, हृदय, आदिक अवयवों के सांधे पेट वगैरह को आराम के साथ फायदा मालूम हो, प्राणायाम करते वख्त अपने शरीर को सीधा और स्थिर रखना चाहिये अभ्यास की जगह अगरबत्ती, धूप, चंदनादि सुगंधी पदार्थ का धूप करना चाहिये, जिससे मनोभावना पवित्र रहे और शुभ विचारों का प्रवाह चालू रहे, अभ्यास करने के स्थान (कमरे) में अधिक स्त्री पुरुष नहीं होने चाहिये, अनुकूल विचार वाले यदि रहे तो हर्ज नहीं प्रतिकूल विचार वालों को वहां खड़े भी नहीं रहने देना चाहिये कारण इससे किसी वख्त ग्लानी पैदा होने की संभावना रहती है जमीन पर चटाई गलीचा वा ऊनका कंबल आदि बिछाना चाहिये।

सूर्यभेदन प्राणायाम।

पद्मासन सिद्धासन या सुखासन से बैठना बांये हाथ के अँगूठे के बीच की लकीर पर तर्जनी अँगुली रखना, बाकी की तीनों अँगुलियां सीधी रखना और हाथ को बांये घुटने पर रखना, गर्दन बरडा कमर समरेखा में समान रहना चाहिये दाहिने हाथ की कनिष्ठिका तथा अनामिका अँगुलियों द्वारा बांयीं नासिका को दबाकर दाहिनी नासिका से स्वांस फेफड़े में भरना, भरे हुये स्वांस को रोक रखने के बाद बाँई नासिका से स्वाँस धीरे धीरे निकाल डालना। इसी प्रकार दाहिनी नासिका से श्वास भर कर बांई से निकाले उसे एक सूर्यभेदन कहते हैं। परन्तु खास ध्यान रखने की बात है कि हर प्राणायाम के वक्त तीन उड्डीयान, जालंधर और मूलबन्ध रेचक, पूरक, कुम्भक और मात्रा सहित करने में आवे तब ही शास्त्रोक्त पद्धति प्रमाण प्राणायाम किया कहलाता है ऐसा करने से अनहद लाभ मिलता है।

मूलबंध यानी गुदाद्वार (मलद्वार) को संकोचन करना, उड्डीयान बंध याने पेट को अन्दर लेजाना, जलंधर बंध याने डाढ़ी को कंठ कूप में लगाना।

तीन बंध कब करना।

प्राणायाम के आरंभ से अन्त तक मूलबन्ध कायम रखना कुंभक (श्वांस फेफड़े में रोक रखना) करते समय जालंधर बन्ध और रेचक करते समय (श्वास बाहर निकालते समय) उड्डीयानबन्ध करना।

भस्त्रिका प्राणायाम (नं० १ ला)

पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन में बैठना दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिनी नासिका को दबा कर बायीं नासिका से दस वक्त श्वास फेफड़े में भरना और छोड़ना ग्यारहवीं वक्त श्वांस फेफडे में भरकर यथाशक्ति कुंभक करने के बाद दाहिनी नासिका द्वारा धीरे धीरे श्वास बाहर निकाल देना और फौरन ही दाहिनी नासिका से दश वख्त श्वास भरना और छोड़ना, दाहिनी नासिका से श्वांस लेते समय बायीं नासिका को अनामिका तथा कनिष्ठिका अंगुलियों से दबा रखना दसबार घर्षण होने के बाद दाहिनी नासिका से स्वांस भर लेना और यथाशक्ति कुंभक करने के बाद बायीं नासिका से स्वांस आहिस्ते आहिस्ते निकाल देना इस तरह दोनों नासिका से एक के

बाद दूसरी से दस दस वक्त घर्षण दो वक्त अन्तर कुंभक करने में आवे तब एक भस्त्रिका प्राणायाम (नं० १ ला) सम्पूर्ण हुआ कहलाता है घर्षण करते समय नासिका से साधारण आवाज आना चाहिये।

पूर्ण पद्मासन—

पद्मासन में बैठ कर दाहिने हाथ को पीठ के पीछे से लाकर दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ना और बायें हाथ को पीठ के पीछे से लाकर बायें पांव के अंगूठे को पकड़ना कदाचित् पाँव मोटा होने के कारण अंगूठे न पकडे जायें तो दोनों हाथ के पंजे मिला कर पकड़ लेना उसके बाद श्वास फेंफडे में भर कर सिर जमीन पर टिकाना श्वास रोक सको वहां तक सिर जमीन को अड़ा कर रखना और फिर पूर्व असल स्वरूप में ले आने के बाद धीरे धीरे स्वांस बाहर निकाल देना इस तरह एक वक्त करने में आवे तब एक पूर्ण पद्मासन संपूर्ण होता है।

भस्त्रिका प्राणायाम (नं० २ रा)

पद्मासन या सुखासन में बैठ कर दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिनी नासिका को दबा रखना बायीं नासिका से श्वास फेफडे में भरना और फौरन अनामिका और कनिष्ठिका अंगुली से बायीं नासिका को दबा कर दाहिनी नासिका से स्वांस फेफडे में से निकाल देना इस तरह श्वास दस वक्त लेना और छोड़ना (एक वक्त लेकर छोड़ने में आवे तब एक घर्षण हुआ ऐसा समझे) ग्यारहवीं वक्त बायीं नासिका से श्वास लेकर यथा शक्ति कुंभक करके दाहिनी नासिका से धीरे धीरे स्वाँस बाहर निकाल देना और फौरन ही दाहिनी नासिका से पूरक तथा बायीं नासिका से रेचक करना चाहिये इस प्रकार दस वक्त करने के बाद शीघ्र ही दाहिनी नासिका से पूरक करके यथाशक्ति कुंभक करने के बाद बायीं नासिका से शनैः शनैः रेचक करना चाहिये तब १ भस्त्रिका प्राणायाम नं० २ रा संपूर्ण हुआ कहलाता है।

इन प्राणायामों को नित्य करने से फेफडे मजबूत होते हैं। हृदय को बल मिलता है। दिलकी धड़कन, स्वांस, क्षयी आदि दुष्ट रोगों से इन प्राणायामों को करने वाला बचा रहता है और उसमें साहस, संयम, उत्साह आदि हृदय से संबंध रखने वाले गुणों की वृद्धि होती रहती है।

—※—

जो अकेला खाता है वह पाप खा

था ी है ना नहीं

(ले०—डाक्टर फतहसिंह एम० ... वापिस कर

थ नहीं निभा आये. बात

पिता के क्रोध से नचिकेता य... अतिथि हुआ। मृत्यु के पश्चात् ... ने भी पुत्र वियोग में प्राण त्याग दि... नौकर पौन्ड्र भी मर गया। ... जानता, क्या

जब नचिकेता यम के यहां पहुंचा मैं उसके स्थित न थे। यमदूतों ने उसे यमपुरी में भूखों हूं। छोड़ दिया। तीन दिन तक बेचारा बालक भूखा प्यासा फिरता रहा। चौथे दिन यमराज ने बालक नचिकेता को बुलाया। "तुम तीन दिन से भूखे प्यासे पड़े हुए हो बालक?" "हाँ, महाराज!" "अच्छी बात है"—यमराज कुछ गंभीर हो गए बोले—"तुम तीन दिन हमारे यहां बिना खाये पिये पड़े रहे. अतः मैं तुम्हें तीन वर दूंगा।" माँगो क्या मांगते हो।

नचिकेता डर गया। बोला—क्या जो मैं मागूंगा, वही दे दीजिएगा?

"हाँ, नचिकेता! डरते क्यों हो? तुम जो चाहो मांगो।

"तो मैं पहिली बात यह मांगता हूं कि मेरे मां बाप जीवित हो जांय। दूसरा वर यह चाहता हूं

ेरा नौकर जी जाय, तीसरी मेरी प्रार्थना यह
ेरे नगर निवासियों को अन्न की कमी न हो,
खे लोगों की सेवा कर सकें।

प्राणाय ने बहुत प्रसन्न होकर कहा—अच्छा
नहीं होना किन्तु बालक ! तुमने अभी तक जो
अधिक जोरसे रों के लिए ही मांगा है। अब कुछ
ऐसा स्थान नह ग लो। मैं तुम्हे एक वर और
भान होना च

समय शरीर ने देर तक सोच कर कहा—"राजन् !
अच्छा, मुझ पर इतनी दया है, तो मुझे यह
गे दीजिए कि मौत से छुटकारा क्यों
मिले ?

यमराज बालक का प्रश्न सुन कर चौंक पड़े। बोले—यदि चाहो तो मैं तुम्हें अमर कर सकता हूं, जिससे राजा होकर तुम खूब सुख भोग सकते हो।

नचिकेता दुःखित होकर बोला—"हे यमराज ! मेरे अकेले अमर होने से क्या होगा, जब कि अन्य व्यक्ति मौत के शिकार होते रहेंगे। यदि आप मुझ पर दया दिखाना चाहते हैं तो वही ज्ञान दीजिए जिससे मौत से छुटकारा मिल सकता है ?"

यमराज ने इस बार क्रुद्ध होकर कहा—देखो ! नचिकेता ! यदि अधिक हठ करोगे, तो तुम्हें अभी फांसी पर लटका दिया जायगा। जिस ज्ञान को तुम सीखना चाहते हो वह एक गुप्त मन्त्र है, जो मनुष्य को नहीं बताया जा सकता।

नचिकेता ने धैर्य से कहा—यमदेव ! मैं फांसी से नहीं डरता। मुझे वही मन्त्र बतलाइये। " नचिकेता डटा रहा।

अन्त में यम बोले—नचिकेता मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। तुम अपने उद्देश्यों तथा कार्यों में दृढ़ हो, आत्म निष्ठ हो। तुम अपने विचारों को डावाडोल नहीं करते हो। इसलिए अवश्य ही तुम उस गुप्त मन्त्र को जानने के योग्य हो।—" यह कहते हुए यम बालक को एकान्त में ले गए और उसे उपदेश करते हुए बोले—तुम्हारे शरीर में ही परमेश्वर है, जरा आंख खोल कर देखो। मुक्ति तुम्हें स्वयं अपने कर्मों से ही प्राप्त होगी।"

नचिकेता देर तक सोचता रहा। उसका चेहरा खुशी से दमक उठा।

स्त्री और पुरुष।

(ले०—डा० विश्वामित्र वर्मा मानस चिकित्सक)

संसार बनाकर उसका संचालन करने के लिये स्रष्टा ने मनुष्य को बनाया। परन्तु मनुष्य बना देने के पश्चात् जब स्त्री बनाने का विचार किया तो मालूम हुआ कि संसार और मनुष्य के बनाने में ही उसकी सब सामग्री, मसाला, साधन खत्म हो गया, स्त्री कैसे बनावें ? स्रष्टा तो स्रष्टा ही है, उसने सोचा, अब और चीजें कहां से लावें जिससे स्त्री बने ? अस्तु संसार की ही बनी हुई सामग्री में से उसने थोड़े थोड़े अंश नोंच लिये और स्त्री बनाया। बहुत गंभीर विचार और आविष्कार के पश्चात् ही उसने ऐसा किया। सृष्टि करना खिलवाड़ नहीं है।

उसने चन्द्रमा में से कुछ अंश लेकर सौन्दर्य, आकर्षण, शीतलता का समावेश स्त्री में किया। तारों की जगमगाहट का कुछ अंश लेकर उसने स्त्री की मुस्कान दृष्टि तथा चाल में जुगनू के गुण डाल दिये। लताओं में से कोमलता तथा प्रसार सौन्दर्य लेकर स्त्री में डाली जिससे उसके शरीर में लचीलापन आया।

लौकी ककड़ी काशीफल आदि जैसे फलवाली लताओं में स्थान स्थान पर एक छोटी सी नरम ऐसी शाखा अंकुरित होती है जो अन्य सहयोगी वृक्ष की टहनियों पत्तों डालियों को पकड़ कर उसमें अच्छी तरह लिपट जाती है इस प्रकार अपनी लता को ऊपर चढ़ कर बढ़ने से मदद करती है,

स्टष्टा ने वह अंकुरित शाखा भी स्त्री में डाली है जिससे वह मनुष्यों को जैसे अपने चंगुल में फंसा लेती है। स्रष्टा ने घास जैसी कांपने वाली, फूलों के समान खिलने वाली, पत्तों जैसी हल्की, हाथी की सूंड जैसी सुडौल और लचीली, हिरन जैसी दृष्टि वाली, मधुमक्खियों के समान आपस में मिलकर मेले जैसा दृश्य बनाने वाली, जाड़े में सूर्यकिरणों जैसी सुहानी और आनन्द दायक, बरसते हुए बादलों के समान आँसू बहाने वाली, वायु के झोंके के समान सब दिशाओं में चलने वाली, अनिश्चित मार्गी, खरगोशके समान डरपोक, मयूर के समान हाव भाव करने वाली, तोते के समान नम्र हृदय वाली, अभेद्य धातु जैसी कठोर चरित्र वाली, मधु जैसी मिठास वाणी वाली, व्याघ्र के समान निर्दय स्वभाव वाली, अग्नि के समान उपयोगी तथा विनाशकारी, हिम के समान शांतिदायी, चिड़ियों जैसी व्यर्थ बकवाद, चें चें करने वाली, कोयल सी गाने वाली, बगुले के समान भक्ति करने वाली तथा चकई के समान श्रद्धालु संगिनी—बनायी। अर्थात् संसार के उपरोक्त वस्तुओं एवं प्राणियों में से अमुक अमुक गुण लेकर स्रष्टा ने सब का सम्मिश्रण करके स्त्री की रचना कर उसको मनुष्य के हाथ सौंप दिया।

मनुष्य स्त्री को पाकर प्रसन्न हुआ—चला गया। परन्तु पन्द्रह दिन बाद वह वापस आया और कहने लगा, हे रहस्यमय सृष्टि कर्ता, तूने संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य और रहस्य का प्रदर्शन किया है। ले तू यह स्त्री, जो तूने मुझे दी थी। मुझे नहीं चाहिये। उसके साथ रहते मुझमें उत्तेजना होती है, मुझे वह चिढ़ाती है, तंग करती है, मुझे थका देती है, सब कुछ करती है, वह क्या करती है, क्या नहीं करती है। मैं उससे तंग आ गया हूं, उसके साथ मैं नहीं रह सकता।

स्टष्टा ने औरत वापस ले ली। आदमी चला गया।

परन्तु दो सप्ताह पश्चात् मनुष्य वापस आया और स्रष्टा से कहा, जो स्त्री आपने बनायी है और मुझे पुनः दे दीजिये, मैं उसके बिना नहीं रह सकता।

स्रष्टा ने कहा, ऐं तुम तो औरत वापिस कर गये थे, कहा था कि मैं इसके साथ नहीं निभा सकता, और आज वापस लेने आये. बात क्या है ?

मनुष्य ने कहा मैं स्वयं नहीं जानता, क्या बताऊँ, मेरा अजीब हाल है। न तो मैं उसके साथ रह सकता हूं, न उसके बिना रह सकता हूं।

स्रष्टा ने कहा, ठीक है, औरत ले जाओ। तुम दोनों खूब मिल-जुलकर अच्छी तरह साथ रह कर जीवन निभाओ, क्योंकि मैंने तुम्हारे लिए उसको तथा उसके लिये तुम्हें बनाया है। तुम दोनों हमेशा साथ रहो, तभी पूर्णता है। अलग रहोगे तो अपूर्ण निष्क्रिय, असफल रहोगे।

मनुष्य स्त्रीको लेकर चला गया और दोनों साथ रहने लगे। तब से अब तक दुनियां में इतने लोग इतनी भीड़-भाड़ हो गई।

———

यदि हम यह प्रयत्न करते रहें कि—जितना इस समय जानते हैं उससे अधिक जानें—तो निश्चय ही थोड़े दिनों में बड़े बुद्धिमान बन सकते हैं।

× × ×

जिस प्रकार कोई बुद्धिमान मनुष्य अन्न छोड़ कर मिट्टी नहीं खाता, उसी प्रकार कोई ज्ञानवान मनुष्य, सन्मार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर नहीं जाता।

× × ×

दुनियाँ में जितने भी पाप और दुख हैं वे सब अज्ञानता के कारण हैं। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष पापियों और पीड़ितों से घृणा नहीं करता बरन् उन पर दया दृष्टि से देखता है।

× × ×

विवाहित जीवन सुखमय कैसे बनता है?

(लेखक—एन्ड्री मौटिस)

जिस प्रकार जिस उद्यान का माली उसका ध्यान नहीं रखता वहां बहुत सी घास फूस उग आती हैं, उसी प्रकार जब पति पत्नि दाम्पत्य प्रेम की ध्यान पूर्वक रक्षा नहीं करते, तो वह शीघ्र ही कटु भावों से परिपूर्ण हो जाता है। प्रत्येक बात आलस्य, नीरसता, रोग, परपुरुष या पर स्त्री की चाह इसे हानि पहुँचाने की धमकी देने लगती है। दाम्पत्य जीवन का पथ कंटकपूर्ण हो जाता है।

इस भयानक स्थिति से बचनेके लिए मुझे केवल दो ही इलाज प्रतीत होते हैं सर्वप्रथम तो वह है जो गाहस्थ जीवन का सच्चा सार है—अर्थात यह प्रतिज्ञा कि "हम कभी एक दूसरे का परित्याग नहीं करेंगे, हम अपने सुख और सयोग की, अपने प्रेम और स्नेह की रक्षा करेंगे,हम गिरी हुई प्रत्येक दीवार को, उसके प्रत्येक भाग की निरन्तर प्रयत्न और भक्ति से मरम्मत करेंगे।"

दूसरा इलाज है–पूर्ण अनन्यभाव। जहां हलका और अस्थिर प्रेम हो वहां भेद रखना शायद उचित हो परन्तु विवाहित जोड़े का तो आपस में पूरा-पूरा विश्वास और प्रतीति होना परमावश्यक है। जो दो प्राणी एक दूसरे को आत्म-समर्पण करते हैं, कपट भाव उनका कुछ भी बिगाड़ने न पावे। केवल इस प्रकार ही वह प्रशंसनीय अनुराग संभव हो सकता है जिस का समझना उन लोगों के लिए कठिन है जो अपने अनुभव से इस प्रेम और मित्रता के, विषय वासना और सम्मान के, आसक्ति और प्रशंसा के विचित्र मिश्रण को मानव और दिव्य के विस्मयोत्पादक संभोग को, जिसका नाम सच्चा विवाह है, नहीं जानते।

——

प्रतिभा को जागृत करने का उपाय।

(डाक्टर दुर्गाशंकरजी नागर)

साधारण मनुष्यों की यह मान्यता है कि प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त प्रसाद है किन्तु ये धारणाएं भूल से भरी हुई हैं। आज के मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि प्रतिभा शक्ति जन्म से जिनमें होती है वे ही विकास कर सकते हैं, यह कोई बात नहीं है, किन्तु मनुष्य मात्र में यह अलौकिक शक्ति अप्रकट रूप से विद्यमान है। प्रयत्न, उद्योग और उत्साहपूर्ण आग्रह से यह शक्ति प्रत्येक में जागृत हो सकती है।

प्रतिभा क्या है? यह अलौकिक बुद्धि है, जो बल और योग्यता प्रदान करती है। अलौकिक बुद्धि अर्थात् मन के गुप्त महान् सामर्थ्यों का जाग्रत करना है। प्रतिभा अन्तर्मन की शक्ति है। प्रतिभा को जाग्रत करने के लिए अन्तर्मन को अधिकाधिक जाग्रत करने से ही मनुष्य व्यवहार कुशल बन सकते हैं। प्रत्येक बात का, जो अन्तर से प्रकट होती है, सर्वोत्तम प्रकार से उपयोग करना सीखो और तुम में अधिक कार्य करने की कुशलता प्राप्त होगी।

प्रतिभा सम्पन्न मनुष्य में दो प्रधान लक्षण होते हैं। प्रथम तो यह कि वह शक्तियों के समुदाय पर मन की सब वृत्तियों और बल को स्वभाविकता से एकाग्र कर सकता है और दूसरे उसका अन्तर्मनका विशेष भाग व्यापार मुक्त और सदैव जागृति (Vigilant) रहता है।

प्रतिभा को प्रकट करने की कुंजी अन्तर्मन को जाग्रत करना है। अन्तःकरण से कोई भी विचार स्वीकार करने से वे दृढता से हमारे अन्तःकरण पर अंकित हो जाते हैं। अतः भावना जगत् में तुम कभी अपने को साधारण बुद्धि का मनुष्य मत समझो।

——

मन, बुद्धि, चित्त अहंकार का स्वरूप।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्)

हमारे मन के चमत्कार :—

मन मानव जीवन की सूक्ष्मतम शक्तियों का स्थूल स्वरूप, अन्तर्प्रकाश का ज्योतिर्मय पिंड, मस्तिष्क का जाज्ज्वल्यमान नक्षत्र है। यदि शरीर रथ है, नेत्र, कर्ण, नासिका, जिव्हा और त्वक्–ये पांच अश्व जुड़े हैं, बुद्धि लगाम है, तो हमारा मन सामर्थ्यवान सारथी है। इस सुदिव्यरथ पर आरूढ़ हो आत्मा अज्ञान रूपी घोर शत्रु को पराजित कर अपने यथार्थ पर आसीत होता है। उपर्युक्त रथ के अश्व अत्यन्त द्रुतगामी हैं। उन्हें व्यवस्थित रखने के लिए बुद्धि को दृढ रखना आवश्यक है। इस बुद्धि का व्यवस्थापक मन है। मन एक महा प्रचण्ड शक्ति वाला डाइनमो (Dynamo) समझिये। यह विपुल सामर्थ्यों का वृहत् भण्डार है और नियमों को उत्पन्न करने वाला यन्त्र है। सुख, दुख की प्रतीति, चिंता, हास्य का संचार, संकल्पों एवं आत्म बल का उदय अस्त इसी यन्त्र से सम्पन्न होता है। इसी के प्रताप से बुद्धि ज्ञान संचय करती है, एवं प्रेरणा (Inspiration) की ज्योति उद्भूत होती है। धारणा, बुद्धि एवं चित्त इन तीनों की समीष्ट का प्रतीक मन है। अज्ञान रूपी शत्रु साम्राज्य के विघटन के लिए इसका नियमन प्रधान सम्मान है। यह अजर अमर ज्योतिः स्वरूप सतत् व्यापारशील तथा नवीन अनुभवों का प्रेमी है। इसकी सामर्थ्य महोदधि सी अगाध एवं व्योम सी निःसीम है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान वेत्ताओं ने मन के तीन भाग किये हैं—भावना (Felling) बुद्धि (Thinking) और चित्त (Willing) हमारे आर्य्य शास्त्रकारों ने अन्तःकरण को चार भागों में विभक्त किया है—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। मनस्तत्त्व इन्द्रियों द्वारा उद्भूत रूप–रस–गन्ध–स्पर्श तथा शब्दमयी ज्ञान सामग्रियों की गतिविधि तथा हेयत्व और उपादेयत्व की विवेचना करना है। संसार का कोई पदार्थ ऐसा वेगवान् नहीं है।

तुम मन की क्रियाओं का निरीक्षण कर सकते हो। वह कैसा उछल कूद मचाता है, कहां कहां भागता है मालूम कर सकते हो। जो मन की नाना प्रकार की क्रियाओं का निरीक्षण करने वाला है, वह मन से कोई पृथक सत्ता है। यह हमारी चेतना (Consciousness) है। चेतना ही मन की दृष्टा है। चेतना ही शरीर, इन्द्रिय, मन, तथा बुद्धि की दृष्टा है। चेतना तो केवल निरीक्षण करती है। वह मन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर पाती। मन स्वयं जड़ है, इसका विकास क्रमिक और वातावरण सापेक्ष है। भोजन, वस्त्र, स्थान तथा साहचर्य का इस पर अमिट प्रभाव पड़ता है। दृश्य, स्पृश्य, भोज्यपेय श्राव्य तथा सूँघने योग्य वस्तुओं में प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों को यदि अधिकार योग्यता और स्थिति के विपरीत लक्ष्यों में प्रवृत्त न होने दिया जाय। जो वस्तु, व्यक्ति, अथवा तत्त्व जैसा है, उसके विपरीत उसमें कल्पना के लिए इन्द्रिय परवश मन को अवसर यदि न दिया जाय तो मन मनुष्य को ईश्वर बना सकता है।

मन की प्रवृत्तक सत्ता उसके गर्भ भाग में स्थित है। वह उसी प्रवृत्तक सत्ता की प्रेरणा एवं आधार पर विविध व्यापार करता है। यह अगम्य सत्ता अमृतकुंड नामक स्थल में निवास करती है। यह महासता हमारी आत्मा है। आत्मा ही मन की चालक सत्ता है। वह इसे गति (Motion) प्रदान करती है। मन का प्राण आत्मतत्व ही है। यह आत्मा ही देखने सुनने वाला, छूने वाला, विचार

करने वाला, जानने वाला, क्रिया करने वाला विज्ञान युक्त है।

किसी भी अनुभूत विषय की मन में आवृति होने लगती है। आवृत्ति के कारण बुद्धि पर उसका संस्कार संचित हो जाता है। संस्कार के दृढ़ हो जाने पर वह वस्तु अथवा अनुभूत व्यापार उद्-भावक सामग्री प्रस्तुत होने पर स्मृति पट पर व्यक्त होने लगता है और क्रमशः मनुष्य के वाह्य जीवन में उसका अवतरण होने लगता है। मन मानस से भी अधिक निर्मल, सूर्य सा दीप्त और वायु से भी अधिक गतिशील है। यह मन ही मनुष्य के मोक्ष और बन्धन दोनों का साधन है। वाह्य अवयवों की समता होने पर भी मनुष्य असधारण मन के कारण ही असामान्य बन जाता है। मन की प्रायः अवस्था तीन प्रकार की होती है। पहली अन्धकार मय अवस्था जिसमें मन की स्थिति जड निष्क्रिय जैसी बन जाती हैं, यह अन्धकारमय स्थिति है। तमोगुण के कारण हम इस अवस्था को प्राप्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति उत्तम विचार करना नहीं जानते। मन की दूसरी अवस्था राजसिक अवस्था है। ऐसा व्यक्ति दौड़ धूप करता है और अपना प्रभुत्व दूसरों पर जमाता है। बलवान बनने की महत्वाकांक्षा उसके मन में आरूढ़ रहती है। मन की तीसरी अवस्था अत्यन्त उज्ज्वल एवं पवित्र है। यह सर्वोच्च भूमिका शनैः शनैः अभ्यास से प्राप्त होती है। इसे तुरीयवस्था कहते हैं। धीरे धीरे मन के दृष्टा बनने से तुरीयवस्था में प्रवेश होता है। इसी अभ्यास से हम राजयोग की सर्वोच्च समाधि प्राप्त करते हैं।

मनकी तीन भूमियां—पूर्वीय शास्त्रकारों के अनुसार मनकी तीन भूमियां होती हैं—स्मृति, जागृति तथा धृति। स्मृति भूमि में मानव लोक के ज्ञान तथा अनुभव की खोज की यह दुर्लभ मन्जूषा रहती है, जिसे जागृत मन ने अतीत काल में प्राप्त किया था। "जागृति" में मन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा केवल हृदय जगत् से सन्नद्ध रहता है। धृति में पांच ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग के बिना ही सहानुभूत पद्धति से मन में विचार जानने की शक्ति के इतने अधिक उदाहरण उपस्थित हुए हैं कि संसार को मन के इस प्राकृतिक वेग का पूर्ण विश्वास हो गया है। यह निःसन्देह सिद्ध हो चुका है कि मन में पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को साधन सामग्री के बिना स्वतंत्र रूप से अपने चहुं ओर जो नाना प्रकार की क्रियाएँ सम्पन्न करता है, उसे जान लेने की शक्ति है।

धृतिवस्था मन अथवा ध्यानस्थ आत्मा मनुष्याकार के तुल्य सत्य है, तो भी उसका कोई वजन या तोल नहीं है, तथा न वह दृश्य, स्पृश्य अथवा विभाज्य पदार्थ के समान ही है। सूक्ष्म दर्शक यंत्र में वह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। गंभीर विचार तथा विशुद्ध विवेक भी उसके मूल को, स्वभाव को तथा उसके अन्त को ढूंढ़ने में असमर्थ हैं, तथापि वह मानव के मन में स्थित है एवं अत्यन्त प्रकाशवान है।

शरीर में नाना विकारों का प्रवेश होता है, विचार के तूफ़ान, भ्रान्ति के बवंडर भीमाकार होकर प्रविष्ट होते हैं, आशा निराशा, संकल्प, इच्छा के झंझावात हृदय में आन्दोलित होकर ठहरते, चाहते, उद्वेग उत्पन्न करते तथा अन्ततः चिर शान्ति में विलीन होते हैं किन्तु इस दृष्यमान् जगत् के नित नए नए परिवर्तित होते हुए दृश्यों में श्रेष्ठ हमारे भीतर एक अवर्णनीय सत्ता है—जो शाश्वत है, सत्य है एवं मन के चमत्कृत प्रदेशों में निज रहस्यमय प्रकाश विकीर्ण करता है। धृतिस्थ मन के माध्यम द्वारा मनुष्य का अनन्त शक्ति से जागृत सम्बन्ध हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथेष्ट बल खींचा जा सकता है। केवल मन में बुराई से इन्कार करना यथेष्ट नहीं है। इसी प्रकार केवल मन में भलाई को स्वीकार करना ही यथेष्ट नहीं है, निरन्तर उसको समझने और प्रवृति में लाने का उद्योग करना चाहिये।

——

डायरी लिखने की आवश्यकता

(ले०—श्री 'रामकिशन आर्य' ग्वालियर)

हम प्रति दिन देखते हैं कि प्रायः सभी व्यापारिक फर्में अपने दैनिक आय व्यय का ब्यौरा प्रति दिन लिखती हैं। यदि वे केवल एक सप्ताह के लिये भी ऐसा करना बन्द कर दें तो उनका कारोबार चौपट हो जाय, धूलि में मिल जाय और उन्हें अपना व्यापार बन्द करना पड़े। किसी फर्म को ही क्यों, एक साधारण स्थिति के दूकानदार अथवा क्लर्क को ही ले लीजिये। यदि कोई दूकानदार अथवा क्लर्क अपने दैनिक अथवा मासिक आय व्यय का हिसाब नहीं रखता तो यह बहुत सम्भव है कि उसका व्यय उसकी आय से बढ़ जाय और वह दिन प्रति दिन ऋण के भार से दबता जाय। जब आर्थिक उन्नति के लिये हमें प्रति दिन डायरी लिखने की इतनी आवश्यकता है तो आत्मिक उन्नति के लिये तो वह और भी आवश्यक है।

रोजनामचा हमारा सच्चा मित्र है। वह हमें बता देता है कि अमुक दिवस हमने अमुक गलतियाँ की थीं, अमुक व्यक्तियों के प्रति दुर्व्यवहार किया था, अमुक समय क्रोध किया था, और साथ ही साथ भविष्य में इनसे बचे रहने के लिये हमें सावधान भी कर देता है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब डायरी लिखने वाला डायरी के पन्नों में अपनी आत्मा को उड़ेल कर रख दे, अर्थात् उनसे कुछ छुपाये नहीं, अपना सच्चा रूप ही उनमें अंकित करे। तभी वह उपयोगी सिद्ध हो सकेगी। डायरी किसी को दिखाने के हेतु नहीं लिखी जाती, वह तो आत्मशुद्धता के लिये ही लिखी जाती है। फिर सच २ लिखने में शरम कैसी?

अब प्रश्न होता है कि डायरी में लिखें क्या? शय्या-त्याग का समय, रात्रि में शयन का समय, जप-ध्यान का समय आसन-प्राणायाम का समय तो डायरी में लिखना ही चाहिये, इसके साथ साथ दिन में जितनी बार मिथ्या भाषण किया हो, किसी के साथ दुर्व्यवहार किया हो, किसी पर क्रोध किया हो, जितना समय व्यर्थ गपशप में बिताया हो, उनके प्रायश्चित-स्वरूप कोई दण्ड अपने आप को दिया हो, आदि सब बातें भी लिखनी चाहिये। इससे हमें पता चल जायगा कि हमने दिन में क्या २ और गलतियां की हैं। हमें अपनी डायरी का प्रति सप्ताह देख जाना चाहिये। और पिछले सप्ताह जो गलतियां की हों, इस सप्ताह उनसे बचे रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। तभी हम डायरी लिखने का सच्चा लाभ उठाने में समर्थ हो सकेंगे और डायरी हमारी 'आंख खोलने वाली' सिद्ध हो सकेगी।

समस्त संसार के महापुरुषों की उन्नति का राज उनके लिखे गए डायरी के पन्नों में निहित है। महात्मा गांधी अपनी डायरी में लिखते हैं। इसीसे उनके समय का विभाजन ठीक रीति से हुआ करता है। उनके पास एक मिनट भी व्यर्थ बिताने के लिये नहीं बचता। वे प्रत्येक क्षण का पूरा पूरा लाभ उठाते हैं। बेंजमिन फ्रेंकलिन का नाम सबने सुना होगा। वह प्रति दिन अपनी डायरी लिखता था। वह दिन प्रति दिन अपनी गलतियों की संख्या में कमी करता गया और एक दिन आया कि वह विश्व-विख्यात महापुरुष बन गया।

अध्यात्म मार्ग के पथिकों को डायरी लिखना आवश्यक है। अपने भले बुरे कार्य का दैनिक विवरण रखने से मनुष्य अपनी आत्मिक स्थिति से भली प्रकार परिचित रह सकता है और सुधार तथा निर्माण कार्य को दिन दिन आगे बढ़ाता हुआ, नियत लक्ष तक पहुँच सकता है।

सात्विक सहायताएं।

१५) राजकुमारी 'ललन' मैनपुरी स्टेट।
१०) श्रीमती सावित्री देवीजी उलाव।
६) श्री गंगाशरणजी ब्रह्मचारी उमरी।
५) श्री भीखचन्द वर्मा धार।

गायत्री-प्रार्थना ।

(अनुवादक—श्री० ब्रह्मचारी प्रभुदत्त शास्त्री बी० ए०,)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ।

ओं— सर्वव्यापक जो सबकी रक्षा करते हैं भगवान् ।
भूः— सर्व को सत्ता स्फूर्ति दाता, सत्य स्वरूप महान् ॥
भुवः— दुःख के नाशक, चिन्मय, जिनका उत्तम ज्ञान स्वरूप ।
स्वः— सर्वसुखदायक, सुखमय, परम आत्मा, अलख, अनूप ॥
तत्— अनन्त हैं, सर्व सार हैं, जिनका कोई पार नहीं ।
सवितुः— सर्वोत्पादक, रक्षक, प्रेरक, करें संहार वही ॥
वरेण्यम्— है वर्णन करने योग्य जगत् में उनका नाम ।
भर्गो— ज्योतिर्मय, पापों के भजनकर्ता, पूरणकाम ॥
देवस्य— देते हैं सबको दिव्य प्रकाश, शक्ति, आनन्द ।
धीमहि— ध्याते हैं हम सब पूर्ण ब्रह्म श्री परमानन्द ॥
धियः— हमारी बुद्धि वृत्तियों को वह दीनबन्धु भगवान ।
यः— जो ऐसी महिमा वाले परमेश्वर हैं दयानिधान ॥
नः— सभी हम जीव मात्र के उर में जिनका वास स्थान ।
प्रचोदयात्— वे करें प्रेरणा जिससे हम पायें उत्थान ॥

भावार्थ— यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यम् तदुपास्महे ।
तत्तेजोऽस्माकं बुद्धीः श्रेयस्करेषु नियोजयेत् ॥
आदिदेव का श्रेष्ठ तेज जो उसका हम करते हैं ध्यान ।
श्रेय कर्म में सदा हमारी बुद्धि लगावे वह भगवान् ॥